Vol 6 Issue 6 Dec 2016 ISSN No :2231-5063

International Multidisciplinary Research Journal

Golden Research Thoughts

Chief Editor
Dr.Tukaram Narayan Shinde

Publisher
Mrs.Laxmi Ashok Yakkaldevi

Associate Editor
Dr.Rajani Dalvi

Honorary
Mr.Ashok Yakkaldevi

Welcome to GRT

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2231-5063**

Golden Research Thoughts Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

Regional Editor

Dr. T. Manichander

International Advisory Board

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

Editorial Board

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.aygrt.isrj.org

GRT Golden Research Thoughts

ISSN: 2231-5063 Impact Factor : 4.6052(UIF) Volume - 6 | Issue - 6 | December - 2016

''आत्मतत्व का ज्ञान मुक्ति का उपाय''

शिवशंकर नापित[1] एवं डॉ. रमाशंकर द्विवेदी[2]

[1]शोधार्थी, संस्कृत विभाग, शास. ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

[2]आचार्य, शास. स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय त्योंथर रीवा (म.प्र.)

सारांश –

वस्तुतः धर्म का वास्तविक प्रयोजन आत्म पदार्थ का शोधन होना चाहिए। अन्तःकरण की शुचिता के बिना लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही व्यवहार लोकनाशक हो जाएँगे, अतः अन्तःकरण की शुद्धि परम आवश्यक है। अन्तःकरण की पवित्रता हेतु पाँच बातों की ओर ध्यान जाता है– कर्म की शुद्धि, भोग शुद्धि, भाव शुद्धि, अहंशुद्धि और शुद्ध चिन्तन। अन्तःकरण चिन्तनात्मक है। अतः जब चिन्तन शुद्ध हो जाता है तब अन्तःकरण भी शुद्ध हो जाता है।

मुख्य शब्द – आत्मतत्व, अन्तःकरण एवं आध्यात्मिक ।

प्रस्तावना –

माण्डूक्योपनिषद् में तत्व निरूपण करने के लिए साधन और सिद्धि के रूप में आत्मा का चार विभागों में निरूपण किया है। वैश्वानर शूद्र है और तैजस् वैश्य, प्राज्ञ क्षत्रिय है तथा तुरीय ब्राह्मण है। सेवा, व्यापार (वाणिज्य), उपसंहार एवं तत्वज्ञान इनकी वृत्ति है। इसी क्रम से आश्रम व्यवस्था भी है। ब्रह्मचारी वैश्वानर, गृहस्थ तैजस्, वानप्रस्थ प्राज्ञ और तुरीय संन्यास है। जाग्रत् स्वप्न आदि की उपाधि से जैसे आत्मा में गुण धर्म होते हैं। जैसे स्थानुरूप स्थानी का अनुसन्धान करने से आत्म पदार्थ का विवेक होता है। वैसे ही साधार वर्णाश्रम व्यवस्था का चिन्तन एवं तदनुकूल धर्मानुष्ठान से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अनुष्ठान सहित चिन्तन बुद्धि को निर्मल तथा तदाकार बना देता है। अतएव धर्मज्ञान को धर्मानुष्ठान की तथा धर्मानुष्ठान को धर्मज्ञान की अपेक्षा होती है। अतः जो

अध्यात्म को बड़ा समझता है वह वेद ज्ञान एवं क्रियाफल से भी बाधित हो जाता है।

शास्त्रोक्त सकाम कर्म से भी अन्तःकरण की शुद्धि होती है, क्योंकि अलौकिक स्वर्ग सुख ब्रह्मलोकादि भोगने का सामर्थ्य अन्तःकरण में नहीं रहता। धर्मानुष्ठान के द्वारा उनके भोग योग्य अन्तःशरीर का निर्माण होता है वह लौकिक रीति से विलक्षण होता है। सकाम कर्म अशुद्धियों को दूर करके इस शुद्ध शरीर को उत्पन्न करता है। यदि बीच में कदाचित वैराग्य उदय हो जाय तो परमार्थ स्वरूप परमात्मा का भी साक्षात्कार हो जाता है।

संसार के पदार्थ इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। उनकी प्राप्ति की इच्छा अर्थ पुरुषार्थ के नाम से कही जाती है। वे अपने मन और शरीर से बाहर रहते हैं। उनका संयोग श्रम साध्य है और वियोग नैसर्गिक। उनकी प्राप्ति में पराधीनता है, चिन्तन में तन्मयता होने से जड़ता है, अप्राप्त होने पर दुःख है प्राप्त होने पर विनाश का भय है। वस्तुतः सुख एक मानसिक अनुभूति है।

अर्थ बहिरंग है, काम अन्तरङ्ग है। काम अन्तःकरण में रहता है। मनोरूप होने से इसकी गति उच्छृङ्खल है। अनुभूति के संस्कार, दूर की वस्तुओं के सम्बन्ध में मनोराज्य, प्राप्ति के प्रति ममता और अभिमान, भोग में आत्म विस्मृति ये सब काम पुरुषार्थ के सहचर हैं। यह सब होने पर भी काम पूर्ति में सुख है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह अनुभव सिद्ध है कि अभिरुचि के अनुरूप भोग प्राप्त होने पर सुखानुभूति होती है। प्रश्न यह होता है कि क्या इसको रुचि पर छोड़ देना चाहिए? चाहे जिस वस्तु और व्यक्ति पर स्वत्व स्थापित कर लेना उसका उपभोग कर लेना क्या अपने हित में या समाज के हित में उपयोगी है? इसीलिए काम और अर्थ के नियन्त्रण के लिए धर्म की जीवन में आवश्यकता है। धर्म का निवास बुद्धि में है। उपनिषद् का वचन है– विज्ञान ही यज्ञ का विस्तारक है। अन्तर्यामी परमेश्वर की शक्ति बुद्धिस्थ होकर ही उचित अनुचित, ग्राह्य त्याज्य कर्तव्याकर्तव्य को इङ्गित करती हैं। विषयवासना का आक्रमण होने पर भी प्रज्ञा पराजित नहीं होती कर्म के बल पर प्रतिष्ठित होती है। लक्ष्योन्मुख जीवन को धर्म ही अग्रसर करता है और पथ भ्रष्ट होने से त्राण करता है।

धर्म उच्छृङ्खल अर्थ–तृष्णा को संयत करता है, भोगलिप्सा को नियमित करता है। इस प्रकार दुराचरण के आन्तरिक निमित्तों को ही कुण्ठित कर देता है। धर्म के दो काम हैं स्वच्छन्द प्रवृत्ति का अवरोध और निवृत्ति की परिपुष्टि। अवरोध से अर्थ–काम पर नियन्त्रण होता है और निवृत्ति की परिपुष्टि से मोक्ष की सहायता होती है।

प्रायः अनन्त वेद राशि दो प्रकार से पदार्थों का निरूपण करती है– प्रथम सिद्ध वस्तु का वर्णन और साध्यवस्तु एवं उसकी प्राप्ति का उपाय। पहला ब्रह्म है दूसरा धर्म। सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार होता है तद्विषक अविद्या की निवृत्ति से। अविद्या की निवृत्ति होती है तद्विषयक विद्या से। ब्रह्म विद्या है, ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान। एक विषय से सर्व विज्ञान होता है यह वेद की प्रतिज्ञा है। इसके लिए स्वर्ण लौह आदि मूल धातुओं के दृष्टान्त हैं। प्रतीयमान सब कुछ ब्रह्म मात्र ही है। केवल प्रज्ञानधन तन्मात्र आत्मा का कभी बाध नहीं हो सकता। आत्मा से भिन्न होने पर ब्रह्म को कल्पित या जड़ मानना पड़ेगा। महावाक्य स्पष्ट रूप से आत्मा और ब्रह्म की एकता का वर्णन करते हैं ''अयमात्मा ब्रह्म'' अतएव ब्रह्म विद्या अर्थात् आत्मा, ब्रह्म की एकता बोध भेद का बाध है अद्वय ब्रह्म ही सिद्ध वस्तु है। शम, दम आदि सम्पन्न जिज्ञासु अधिकारी के लिए वेद इसी का निरूपण करता है।

विश्लेषण –

जिनकी दृष्टि विशेष–विशेष सृष्टि में तादात्म्यापन्न हो गयी है, ब्रह्मात्मा के सिद्धि स्वरूप के अज्ञान से परिच्छिन्न पदार्थों में

Volume - 6 | Issue - 6 | December - 2016

अहंता–ममता करके जड़प्रायः हो गयी है, जो अपने को कर्ता भोक्ता संसारी परिच्छिन्न मानकर दृश्य के मोहजाल में फँस गये हैं उनको वहाँ से मुक्त करने के लिए श्रुति रूपी गोपिकाओं के साथ ब्रह्म ही कृष्ण रास रस को प्रदान किये। स्वच्छन्द प्रवृत्ति का निरोध ही कर्म मार्ग का प्रारम्भ है। दुश्चरित, दुर्वासना, दुर्गुण चांचल्य आदि दोषों का परिहार करके अन्तःकरण को शुद्ध करना और सिद्धवस्तु के साक्षात्कार के योग्य बनाना यही गोपी धर्म का कार्य है। यह गोपीधर्म साध्याकार वृत्ति को उत्पन्न और स्थिर करता है। शुद्धाकार वृत्ति शुद्ध चिन्तन की धारा है। उसी में शुद्ध तत्व की जिज्ञासा और महावाक्य के निमित्त से भ्रम निवर्तक ब्रह्मात्मैक्य प्रभा का जन्म होता है। वह भ्रम को मिटाकार निष्प्रयोजन हो जाती है और स्वरूप में स्वयं बाधित हो जाती है।

मनुष्य में अनुकूल या प्रतिकूल वृत्ति होती रहती है। इनसे ही सुख–दुख की उत्पत्ति होती है। इस अनुकूलता और प्रतिकूलता का भाव समाप्त हो जाय तो रास सुख मनुष्यों को प्राप्त हो जाय– श्रीकृष्ण कहते हैं–

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।[4]

वस्तुतः ऐसा कोई कर्म नहीं जो दुःखप्रद न हो, जहाँ मनुष्य को सुख की प्रतीति होती है उसके अन्तरतम में दुःख ही निगूढ़ है। श्री पतंजलि जी कहते हैं–

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।[5]

जो ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न भोग हैं वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तथापि दुख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं इसलिए बुद्धिमान पुरुष उनमें नहीं रमता। तो क्या मनुष्य को कर्मों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए? इस विषय में श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है–

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत्।[6]

जो कर्म मन इन्द्रियों को ले जाकर दूसरे के पास पहुँचाने वाला है, पराधीन बनाने वाला है। उसको प्रवृत्त कर्म कहते हैं। जिससे निवृत्ति हो अर्थात् बाहर से लौटकर अपने आत्मा में स्थित हों, पाप–पुण्य, सुख–दुख आदि भाव की निवृत्ति हो जाय उसको निवृत्ति कर्म कहते हैं। अर्थात् कर्मी की दो श्रेणी हुई एक प्रवृत्त दूसरा निवृत्त कर्म। निवृत्त कर्म कितने प्रकार के हो सकते हैं यह प्रश्न होता है? क्योंकि विभिन्न श्रेणी के मनुष्य एक जैसा आचरण करने में असमर्थ हो सकते हैं।

सामान्यतः बुद्धि प्रधान, हृदय प्रधान तथा शरीर प्रधान व्यक्ति देखे जाते हैं। जो शरीर प्रधान हैं वे परिश्रम पर अधिक विश्वास रखने वाले होते हैं उनके लिए निवृत्ति प्रधान कर्म में निष्काम कर्म की ओर प्रेरित किया गया, तथा जो बुद्धि प्रधान मनुष्य है उन्हें ज्ञान योग और हृदय प्रधान व्यक्तियों को भक्ति योग का विधान किया गया है।

अब कर्म करते हुए भी कर्म के बन्धन से कैसे छूटा जाय– यह प्रश्न है। जहाँ–जहाँ कर्म की निन्दा आती है, वहाँ–वहाँ उसके फलासक्ति की निन्दा की गयी है। अथवा काम्य कर्म की निन्दा आती है। कर्म के साथ कामना हो तो कर्म निन्दित है और कर्म का फल हमको भोगना पड़े तो भी कर्म निन्दित है और यदि कर्म का फल हमें न प्राप्त हो और कर्म के साथ कामना भी न हो और नित्य नैमित्तिक कर्म किया जाय तो कर्म से भी हम बहुत ऊँची गति प्राप्त कर सकते हैं। यह कैसा कर्म है? वस्तुतः इस प्रकार के कर्म ही संस्कार प्रदान करते हैं अविद्या की निवृत्ति करते हैं और परम पुरुषार्थ मोक्षप्रदाता होते हैं। लोक में भी इन्हीं कर्मों से यशादि की प्राप्ति होती है। वेद में जो कर्मों का वर्णन है वह कर्म से छुड़ाने के लिए है–
जब तक मनुष्य में भय और लोभ की वृत्ति है तब तक वेद कर्म न करने से हानि का भय और करने से स्वर्गादि सुख के भोग का लोभ दिखाते हैं। परन्तु वेद का तात्पर्य कर्म के फल में नहीं हैं, बल्कि निष्काम कर्म में ही है। यहाँ प्रश्न होता है कि यदि वेद का तात्पर्य स्वर्गादि सुख में नहीं है तो कर्म ही क्यों किये जाँय? इसका उत्तर देते हैं–

नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः।
विकर्मणा ध्यानधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः।।[7]

जिसका अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हुई हैं वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मों का त्याग कर देता है तो वह विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्म रूप अधर्म ही करता है इसलिए वह मृत्यु के बाद पुनः मृत्यु को प्राप्त होता है।

अर्थात् जब तक अज्ञान का नाश न हो जाय तब तक स्वेच्छा से वैदिक कर्मों का त्याग न करें। इस अज्ञान का नाश कब होता है? यह प्रश्न होता है। श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं–

बद्धोमुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्।।
शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया।
स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी।।[8]

जो बन्धन और मोक्ष में विरोध प्रतीत हो रहा है, वह वस्तु का दर्शन करके वस्तु में बन्धन और मोक्ष दिखाई देता है या प्रतीति में, वस्तुतः भ्रान्ति में बन्धन और मोक्ष दिखाई देता है। यह जो गुण है अर्थात् अन्तःकरण है, इन्द्रियाँ हैं और विषय हैं इनको जब हम व्यवहार में देखते हैं, तो यह देखते हैं कि इनके साथ ''मैं'' करके कौन फँसा हुआ है। अतः इनके साथ जिसने मैं कर लिया है उसको ''बद्ध'' कहते हैं और जिसने इनके साथ मैं छोड़ दिया है उसको व्यवहार में ''मुक्त'' कहते हैं। अतः बन्धन और मुक्ति दोनों सृष्टि दशा में अर्थात् व्यवहार दशा में है। अन्तःकरण के साथ तादात्म्य भ्रान्ति है। ''मे न वस्तुतः''

Volume - 6 | Issue - 6 | December - 2016

वस्तुतः मेरे स्वरूप में बन्धन और मुक्ति का व्यवहार नहीं होता।

''गुणस्य मायामूलात्वन्न मे मोक्षो न बन्धनम्'' ये इन्द्रियाँ भोग पदार्थ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर में माया अर्थात् परमात्मा में प्रतीतिमात्र हैं। श्री गौड़पादाचार्य जी महाराज कहते हैं–

न निरोधो न चोत्पत्तिः न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न च वै मुक्तः इत्येषा परमार्थतः।।

इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं–

विदाविदो मम तनू विद्धयुद्धव शरीरिणाम्।
मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते।।[5]

वस्तु में बन्ध और मोक्ष का भेद नहीं है क्योंकि बन्ध और मोक्ष इन दोनों भावों का जो अत्यन्ताभाव है, वह वस्तु में रहता है। अर्थात् वस्तु मोक्ष बन्ध दोनों भावों का अधिष्ठान है। अतः ब्रह्म में न बन्ध है न मोक्ष है और उसी में जब बन्ध और मोक्ष की प्रतीति होती है तो अधिष्ठान निष्ठात्यान्भाव प्रतियोगी होने के कारण जिस वस्तु में जिसका अभाव है जिसमें जो नहीं है उसी में वह वस्तु दिखाई पड़ती है इसलिए मिथ्या है। अतः शुद्धात्मा में बन्धन मोक्ष नहीं है तथापि दिखाई पड़ता है इसलिए मिथ्या है। परन्तु जब तक हम व्यवहार में हैं तब तक यह भेद करना पड़ेगा कि कौन अपनी उपाधि से वद्ध है और कौन उपाधि मुक्त है।

निष्कर्ष –

भगवान् कहते हैं कि यह जो संसार में जीव है उनके लिए मेरी विद्या और अविद्या नामक शक्तियाँ मोक्ष और बन्धन देती है। जिसको विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा उसको मोक्ष का अनुभव हो जाएगा। ज्ञान से जो मोक्ष होगा वह उत्पाद्य नहीं होता। वह तो पूर्व से जो स्वरूप है उसी का अनुभव होता है और अज्ञान से जो बन्ध है वह सत्य नहीं है। उसकी प्राप्ति का भ्रम ही होता है। बद्ध जीव के लिए कर्मों का विवेक है मुक्त के लिए नहीं है क्योंकि मुक्त तो स्वप्न की भाँति जाग्रत को भी देखता है अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में देखे गये गोदान और गोवध का पुण्य–पाप नहीं होता उसी प्रकार जाग्रत में भी वह कर्म विकर्म से पृथक् अपने को कर्ता भोक्ता नहीं मानता। परन्तु जो वद्ध है देहाभिमान के कारण कर्ता– भोक्ता होकर पाप–पुण्य से युक्त कर्ता और भोक्ता मानता है।

संदर्भ –

1.गीता –12–18–19
2.योगदर्शन –1/15
3.भागवत –11.10.4
4.भागवत –11.3.45
5.भागवत –11.11.1–2
6.भागवत –11.11.3

शिवशंकर नापित
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, शास. ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- ✶ International Scientific Journal Consortium
- ✶ OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- EBSCO
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Golden Research Thoughts
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.aygrt.isrj.org